विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/85

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २९२५ • मार्गशीर्ष पूर्णिमा [शक] • दि. २७–१२–१९८५ • अंक ७

प्रेरक-प्रसंग

(७)

"मनसिकार" कहते हैं चिंतन–मनन को. "योनिसो मनसिकार" माने ठीक ढंग से चिंतन–मनन करना. जब किसी का चिंतन–मनन ही अयोनिसो होता है याने गलत ढंग से होता है तो वह भ्रम-भ्रांति से छुटकारा पाकर सत्य का दर्शन कर सके, इसकी आशा नहीं की जा सकती. इसीलिए मुमुक्षु को पहले "योनिसोमनसिकार" का अभ्यास करना होता है. मिथ्या संकल्प-विकल्प को त्यागकर सम्यक् संकल्प-विकल्प का अभ्यास करना होता है. यह सच है कि मात्र सम्यक् संकल्प से कोई व्यक्ति सर्वथा विकार-विमुक्त नहीं हो सकता, इसके लिए तो सम्यक् दर्शन याने अन्तर्मन की गहराइयों तक विपश्यना साधना द्वारा यथाभूत सत्य का दर्शन करना होता है. परन्तु सम्यक् दर्शन के लिए सम्यक् विकल्प का अभ्यास प्रथम कदम के रूप में आवश्यक होता है. ऐसा हो तो साधक का मानस साधना की तलस्पर्शी गहराइयों तक अनुसंधान करने योग्य हो जाता है. संकल्प-विकल्प ही गलत चलता रहे तो आगे की सच्चाइयाँ कैसे प्राप्त हों ?

नर को नारी के और नारी को नर के शरीर के प्रति जो प्रबल आकर्षण होता है वह शरीर के संबंध में योनिसो मनसिकार होने नहीं देता. बहुधा गलत चिंतन ही चलता है. शरीर की ऊपरी ऊपरी चमक-दमक, सज-धज और दिख-दिखावे में मन उलझा रहता है और अपने भीतर वासना को उद्दीप्त करता रहता है. जिसे काम-वासना से मुक्त होना है वह पहले चिंतन - मनन को सुधारता है. मनसिकार को योनिसो करता है. संकल्प-विकल्प को सम्यक् करता है.

उदाहरण स्वरूप कोई पुरुष किसी सजी-संवरी कामिनी के कामोत्तेजक रूप को देखकर उसके संयोजित, संगठित, संश्लिष्ट रूप-राशि का मन ही मन विघटन, विभाजन और विश्लेषण करके देखता है. सिर के केश-विन्यास को अलग अलग करके देखता है. अलग अलग किए हुए बालों में क्या खूबसूरती है भला ? आगे बढ़ता है तो मोतियों की सी पंक्तियाँ लगनेवाली दंत-पंक्तियों को मन ही मन अलग अलग करके देखता है. एक दांत टूट कर अलग होने पर उसमें मोतीपना जरा भी तो नहीं रहता. इतना ही नहीं, ऊपर ऊपर से बहुत चिकनी, चुपड़ी आबदार दिखनेवाली चमड़ी को मन ही मन उधेड़कर देखता है— क्या खूबसूरती है उसमें ? और फिर उसके भीतर देखता है– क्या है भला भीतर ? ... मांस है, लहू है, नसों का जाल है, हड्डी है, मज्जा है, आंत है. और क्या है ? ... पीप है, पाखाना है, पेशाब है, पित्त है, कफ है, थूक है, चर्बी है, आंसू है, लार है, नाक का; कान का मैल है आदि आदि. गंदगी ही गंदगी है. कुछ भी तो शुभ, सुन्दर नहीं.

कैसी माया है संयोजन की, संगठन की ? कितनी भ्रांति है ? और इस भ्रांति के कारण कैसा आकर्षण है इस मल-पुंज के प्रति ? जैसे कोई प्लास्टिक की थैली हो और वह पारदर्शी न हो. खूब चटकदार रंगवाली हो. पर उस थैली में मल-मूत्र ही मल-मूत्र भरा हो. यह जानते हुए भी कि इस थैली में मल-मूत्र भरा है तो भी उस थैली की ऊपरी चटक-मटक से लुब्ध होकर कोई व्यक्ति इस भीतरी सच्चाई को बार बार भूल जाय और उसे गले से, छाती से लगाए, चूमे, चाटे. यदि उसे बार बार सच्चाई का होश आता रहे तो वह उस गंदगी से दूर रहने लगे. सही ढंग से चिंतन-मनन करते हुए बार बार अपने मन को भीतर की वास्तविक सच्चाई की याद दिलाता रहे और उस बाहरी बाहरी मिथ्या आकर्षण से अपने आपको दूर करे. और फिर यह भी चिंतन करे कि जैसे मेरा शरीर... पृथ्वी अग्नि, जल और वायु इन चार महाभूतों से बना है; ठोस है, तरल है, वायव्य है और उसमें तापमान है. इन चारों का ही पुंजमात्र है. जैसे मेरा शरीर अष्टकलापों का ढेर है जिसमें

धम्म वाणी

अल्ल चम्म पटिच्छन्नो नवद्वारो महाव्रणो ।
समन्ततो पग्घरति असुचि पूति गन्धियो ॥

विशुद्धि मार्ग–१/६.

गीली चमड़ी से ढके हुए, नौ द्वारों वाले महाव्रण (फोड़े) जसे इस शरीर में से सब ओर सड़ान्ध और दुर्गन्ध की गन्दगी ही रिसती रहती है.

प्रतिक्षण उत्पाद-व्यय होते रहता है, ऐसे ही इस व्यक्ति का शरीर भी चार महाभूतों का पुंजमात्र है, अष्टकलापों का ढेर मात्र है. सचमुच बिल्कुल निस्सार है.

इस प्रकार के सही चिंतन-मनन से साधक विपश्यना साधना करने लायक हो पाता है. केवल चिंतन-मनन से काम-वासना की जड़ें नहीं निकला करतीं. परन्तु योनिसोमनसिकार के आधार पर जब विपश्यना ठीक से करने लगता है तो पूर्व संचित काम-वासनाओं के अन्तःशायी विकार उदीर्ण हो होकर क्षय को प्राप्त होते जाते हैं और समय पाकर साधक उनसे पूर्णतया छुटकारा पा लेता है.

इस संदर्भ में भगवान के जीवनकाल की एक घटना...

कपिलवस्तु का शाक्यवंशी राजकुमार--- नागसमाल. जब भगवान सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करने के बाद पहली बार कपिलवस्तु लौटे तो उनके धर्म-प्रवचनों से प्रभावित होकर अनेक शाक्य-कुमार दाढ़ी-मूंछ मुड़वाकर घर से बेघर हो, भिक्षु संघ में सम्मिलित हो गए. नागसमाल उनमें से एक था. वह कुछ दिनों तक भगवान का उपस्थाक (वैयक्तिक सेवक-सहकारी) भी रहा. पर विकार-विकृत, अस्थिर चित्त के कारण बहुत दिनों तक उनकी सेवा में टिक न सका.

एक दिन भिक्षाटनके लिए नगर में जाते हुए उसने देखा कि सड़क के चौराहे पर लोगों ने एक मंच बांध रखा है, जिस पर एक सुन्दरी नर्तकी नाच रही है. साथ ही सुमधुर वाद्य-वृंद बज रहा है. नर्तकी ने अपने शरीर पर अनेक प्रकार के चूर्ण-विलेपन लगा रखे हैं, चेहरे को आकर्षक ढंगसे चित्रित-मंडित कर रखा है, लुभावना केश-विन्यास बना रखा है और शरीर पर अत्यंत लुभावने वस्त्र पहन रखे हैं. अनेक अंगोंको वेश-कीमती आभूषण-अलंकारों से अलंकृत कर रखा है. वह सजी संवरी कामिनी वाद्य-संगीत के कर्णप्रिय सुर-ताल पर कामोत्तेजक हाव-भाव प्रकट करती हुई मनोहारी नृत्य कर रही है.

नागसमाल का पुराना काम–भोग जनीय राग-रंजित चित्त जागा, परन्तु उसने शीघ्र ही अपना होश संभाल लिया. योनिसोमनसिकार में लग गया. यह कामराज मारदेव का मृगजाल है. मुझे बांध लेने के लिए ही कामराज ने यह जाल बिछाया है.

उसका सम्यक् संकल्प सही दिशा में आगे बढ़ता गया. यह वस्त्राभूषण, माला, गंध, विलेपन, धारण, मंडन आदि बाह्य उपकरण और शरीर पर लगे चंदन-चूर्ण ऊपरी ऊपरी दिखावे का धोखा मात्र है. यह चमकीली चाम भी एक धोखा ही है. इसके भीतर तो मांस है, लहू है, हाड है, नशों का जाल है और पाखाना पेशाब, थूक, पित्त, कफ आदि आदि गंदगी ही गंदगी भरी पड़ी है. यह ऊपरी ऊपरी दिखावा मुझे कदापि लुभा नहीं सकता. शरीर के हर दरवाजे से गंदगी ही गंदगी निकलती है. इस लुभावनी चाम के भीतर का भाग यदि बाहर होता तो हाथ में डंडा लिए हुए कुत्ते, बिल्ली, कौवे, गीध आदि से जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती.

मेरे शरीर की ही तरह इस नर्तकी का शरीर भी पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु इन चार धातुओं से बना है. इस समय इसमें वायु धातु की प्रमुखता है जिसके कारण इसके शरीर में इतनी हलन-चलन हो रही है. यह परमाणुओं का पुंज शीघ्र गति से उत्पन्न होता है, नष्ट होता है. इसके भीतर चित्त के चारों स्कंध और भी शीघ्र गति से उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं. इन पांच स्कंधों में कहीं कोई सार नहीं; निस्सार ही निस्सार हैं.

यों योनिसोमनसिकार करके नागसमाल ने अपने चित्त को विचलित होने से बचा लिया और फिर शीघ्र ही विपश्यना साधना करने में लग गया. सड़क पर नाचनेवाली नर्तकी उसके कल्याण का कारण बनी. उसके लिए प्रेरणा का स्रोत बनी. उसमें तीव्र धर्म-संवेग जागा. उसकी विपश्यना गहराइयों तक होने लगी. काम संबंधी विकारों का क्षय हुआ और उनके साथ साथ अन्य विकारों का, आस्रवों का भी क्षय होता गया और वह शनैः शनैः स्रोतापन्न से सगदागामी और अनागामी की अवस्थाओं को प्राप्त करता हुआ अन्ततः अर्हत पद पर स्थापित होकर धन्य हुआ.

(स. ना. गो.)

साधकोंके उद्‌गार

बोकारो इस्पात नगर की श्रीमती सरिता बाग्मा जो कि वहां हाईस्कूल में इतिहास की अध्यापिका है; हर्षोद्‌गार प्रकट करती हुई लिखती है, "मै ३० मार्च से १० अप्रैल ८५ तक के विपश्यना-शिविर में कुशीनगर गयी थी. परम आदरणीय श्री विट्ठलदासजी मोदी की बड़ी कृपा रही जिनकी प्रेरणाओंसे मुझे उक्त शिविर लेनेका उत्साह मिला. हृदय उनके प्रति आभारसे भरा हुआ है.

मैने सन ८२ के जनवरी/फरवरी में "आरोग्य मंदिर, गोरखपुरमें रहकर "प्राकृतिक चिकित्सा" का व्यावहारिक प्रशिक्षण कोर्स किया था. उन्हीं दिनों आचार्य श्री मोदीजी ने विपश्यना के प्रथम सोपान "आनापान" से परिचय कराया। तब मुझे यह क्रिया एक सामान्यसी ही चीज लगी थी. चूंकि मैं स्नायु-दौर्बल्यकी मरीज थी और नाना प्रकारकी भयोत्पादक दुश्चिंताओंने मन-मस्तिष्क को आक्रांत कर रखा था .. डॉ. साहब (श्री मोदीजी) ने मेरे लिए "विपश्यना" के महत्वको कई बार दुहराया थां और शीघ्रातिशीघ्र कम से कम दस दिनका एक शिविर इगतपुरी में ले लेनेका सुझाव दिया था. पर दुर्भाग्यवश सन ८५ के मार्च तक इगतपुरी तो क्या, किसी अन्य स्थान पर भी मुझे यह सुअवसर नहीं मिल सका. ८२ में आनापान का परिचय प्राप्त कर घर लौटी और पुनः व्याकुलताओं-भरी दिनचर्या निभाती रही. फिर तो आनापान भी बन्द सा हो गया. सच बात यह थी कि मात्र आनापान यानी आती-जाती सांस को देखना अथवा जानना भर मुझे उतना आश्वस्त नहीं कर पाया था. यद्यपि मन की अधिक बेचैन अवस्थामें मैं पांच-दस मिनटोंके आनापान द्वारा स्थिरता प्राप्त करने में काफी हद तक सफल होती रही थी, पर "विपश्यना-शिविर" के लिए अनायास विश्वास पक जावे, ऐसा कुछ नहीं

हुआ. यह अचानक हुआ इसी फरवरी-मार्च के "आरोग्य" अंक में "कुशीनगर में विपश्यना–शिविर" की सूचना देखकर और श्रद्धेय डॉ. मोदीजीका प्रेरित पत्र पाकर. जगह कुशीनगर. इगतपुरीकी अपेक्षा निकट एवं परिचित होने के कारण निर्णय लेनेमें देर नहीं लगी या कहें कि मेरे कष्टोंकी अवधि समाप्त हो गयी थी.

आरोग्य मंदिर, गोरखपुर होते हुए अपने प्राचार्यजी के साथ ही हम कुछ साधक कुशीनगर पहुंचे. शेष इधर-उधर दूर-दूरसे सीधे कुशीनगर पहुंचे थे। सब कुछ बड़ा अच्छा अच्छा, नेक लग रहा था. प्रथम तीन दिन खुशी-खुशी बीते. चौथे दिन अपहरान्हमें "विपश्यना" दी जाने वाली थी और पता नहीं क्यों सुबहसे ही एक काल्पनिक भय मुझ पर छाया हुआ था कि इसकी प्रतिक्रिया जाने कैसी होगी!, जब बिल्कुल नहीं रहा गया तो आचार्यजीसे अपनी समस्या बताई. मुझे तो वे सन ८२ से अच्छी तरह जानते थे. सुनते ही कहा, "मन की इन्ही दुर्बलताओंको दूर करने के लिए ही तो है विपश्यना. और आपको कुछ नहीं होगा. घबरानेकी कोई बात नहीं." मैं आश्वस्त तो हुई फिर भी जी कड़ा करते रहने का प्रयत्न चलता रहा. अपरान्ह ३ बजे जब विपश्यना लेने बैठी तो गुरुजी! आपका हर शब्द (कैसेट के माध्यमसे) अतिरिक्त प्रभावशाली और सशक्त आकाशवाणीसा गूंजता, प्रतिध्वनित होता, मन मस्तिष्क में सीधे पैठ रहा था. सिर, चेहरा, गला, कंधे और... फिर जैसे ही आपका आदेश सुनायी पड़ा ...छातीको देखनेका ... और बस देखनेकी भी देर न थी कि मेरे अन्दर एक उबाल, उफान "रुदन" का जोरसे उठा और मैं क्षण भरमें ही बुरी तरह हिचकियां ले-लेकर बच्चो की तरह फूट पड़ी. पता ही न चला कि यह हुआ क्या! लगभग १०-१२ सेकेन्ड्स की इसी स्थिति पर आचार्यजीका संकेत मिला कि संयमसे काम लूं और उच्चारित शब्दों के अनुसार ध्यान लगाते हुए आगे का कार्य करती चलूं. मैंने वैसा ही किया. पांच बजे जब हम हॉल के बाहर निकल रहे थे तो मैं स्वयं को बड़ा हल्का और एक अनिर्वचनीय सुखसे पूरित महसूस कर रही थी. फिर तो शेष सभी दिन बड़े आनंद और सुकूनमें बीते. मंगल-मैत्रीका दिन तो एक अलग ही नैसर्गिक सुखसे प्लावित रहा. आपने हमें वास्तविक सुख और शांति का रास्ता जो दिखा दिया था. आह! हम किन काली-अंधेरी गलियोंमें भटकते रहे इतने साल! सुख क्या है! कभी जाना ही नहीं. काश, अमिय-घूंटका स्वाद पहले मिल जाता! बार बार यही खयाल आता रहा. फिर विचार आए ... शुक्र है कि अभी ही मिल गया. प्रभु को कोटिशः धन्यवाद! ईश्वर करे सबको ऐसा प्रकाश मिले और जीवन के अंधेरे दूर हों! सब का मंगल हो! सबका कल्याण हो!

गुरुजी, आपके प्रति जो आदर और श्रद्धा हमारे दिलों में ह उसकी अभिव्यक्ति असंभव है. अब तो शीघ्रातिशीघ्र इगतपुरी के विपश्यना-शिविर में आपके चरणोंके तले साधना करनेकी ही कामना है.

● ● ●

विजयवाडा से जैन साध्वी महासती विनोदिनीबाई स्वामी लिखवाती हैं, "आपकी कृपासे हमारी साधना बराबर चल रही है. जीवन में उत्तरोत्तर धर्मका प्रभाव बढ़ता मालूम पड़ रहा है. बहुतसे संकट दूरसे ही चले जाते हैं. धर्म के प्रतापसे हम अपनेको बहुत ही सुरक्षित महसूस करते हैं. हम सबकी नींवमें आपकी मंगल मैत्री है. आप हमको इगतपुरीमें ज्यादा समय रुकने के लिए नहीं कहते तो एक-दो शिविर करके हम चली जातीं और फिर भटक जातीं. आपने हम पर बहुत ही उपकार किया है. जितना भी अहसान माने उतना कम है. आप तथा सबका मंगल हो! .....

एक अन्य पत्र में लिखती हैं, "आपके आशिर्वादसे हमारा चातुर्मास सफलतापूर्वक समाप्त हुआ है. पू. महासतीजीने कृपा करके मुझे शिविर में जानेकी आज्ञा दी और मैं गई और ध्यानका लाभ मिला. ध्यानसे न मालूम अपने आप जीवनमें बहुत ही फेरफार और फायदा मालूम होने लगा है, यह बात अब बहुत स्पष्ट-स्पष्ट समझमें आने लगी है. सारे दिनमें कम से कम आधा समय श्वास और संवेदनाको देख सकती हूँ. जब जब विकारोंका तूफान उठता ह तब साथ में ध्यान भी चलता है और देखते देखते वह समाप्त हो जाता है. अपनी कमी, अपनी भूल तुरंत समझमें आ जाती है. शारीरिक शक्ति भी बढ़ रही है, ऐसा लगता है. और भी अनेक प्रकारके लाभ महसूस होते हैं."

● ● ●

लखीमपुर, खीरी से भिक्षु शीलरत्नजी लिखते हैं, "इगतपुरी के शिविर में भाग लेकर लौटा हूँ तबसे आपके आदेशानुसार सदैव प्रातःकाल एवं सायं पूजा-वंदना के बाद एक-एक घंटा विपश्यनाका अभ्यास नियमित कर रहा हूँ. विशेष लाभ यह है कि आपकी ही अनुकम्पासे पूर्ण धम्मदेशना प्राप्त हुई. वैसे तो मैं भिक्षु हूँ और यथाशक्ति शीलका पालन करता हूँ किन्तु समाधि के पूर्ण अभ्यास के बिना प्रज्ञाका सम्यक् अनुशीलन व ज्ञान अधूरा था जिसकी कमी हमें बहुत दिनोंसे महसूस हो रही थी. अब वह आप जैसे श्रेष्ठ धम्मदानी दायक आचार्य द्वारा प्राप्त कर मैं धन्य हुआ. यह भारत ही नहीं. समस्त विश्वकी तनावपूर्ण दुरावस्थाके समय आप द्वारा विपश्यना का प्रशिक्षण एवं विपश्यना – केंद्रोकी स्थापना विश्व को एक अनुपम देन है. इससे ही विश्वशांतिकी स्थापना होगी, ऐसा मेरा विश्वास है. ... भवतु सब्ब मंगलं! "

● ● ●

नई दिल्ली से श्री भागीरथ प्रसाद लिखते हैं, ...वह दिन मैं कसे भूल सकता हूँ जब दो साल पहले मैंने पहली बार धर्मगंगामें डुबकी लगाई, विपश्यना जैसी कल्याणकारी विद्या पायी थी. जीवनकी जैसे धाराही बदल गयी, नई दिशा मिली. अभी भी जब सुबह-शाम ध्यान करने बैठता हूँ गुरुदेवकी कल्याणकारी वाणी साधना-क्षेत्रमें और गहराईमें ले जाती है – सजगता और समतारूपी दो अस्त्रों के सहारे ..

आज गुरु-पूर्णिमाके पर्व पर मेरी मंगल-कामना है कि गुरुदेव अपने उच्चतम् लक्ष्य पर पहुंचे व संसारके लोगोंका अधिक से अधिक कल्याण कर सकें. विपश्यनारूपी शुद्ध धर्मकी अमर बेल फैले. सबका मंगल हो! "

विपश्यना-शुल्क

हिसाबकी सुविधाके लिए "विपश्यना" पत्रिका का वार्षिक शुल्क-वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक का निश्चित किया हुआ है. अतः वार्षिक-शुल्क देनेवालों का शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो गया। आगामी वर्ष के लिए कृपया अपना शुल्क नीचे लिखे पते पर इगतपुरी भेजें।

पता – **व्यवस्थापक, पत्रिका विभाग,**
विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि,
इगतपुरी–४२२ ४०३.

शुल्क भेजते समय इस बातका ध्यान रखें कि मनीऑर्डर पर आपकी ग्राहक संख्या अवश्य लिखी होनी चाहिए जो कि पत्रिका पर चिपकाए पते पर नाम के पहले लिखी होती है। अन्यथा 'असाधक' समझकर आपका म. आ. वापस लौटा दिया जायेगा।

फिलहाल केवल 'विपश्यी साधकों' को ही पत्रिका भेजने की व्यवस्था है। इसलिए जो कभी किसी शिविरमें सम्मिलित न हुए हों, वे कृपया अपना शुल्क भेजने का आग्रह न करें।

ऐसा कोई साधक जिसे पत्रिका न जाती हो और उसे अपनी ग्राहक-संख्या भी न मालूम हो तो पहलीबार जब विपश्यनाके शिविरमें बैठे थे, उसका विवरण याने शिविर-क्रमांक अथवा उसका स्थान व समय लिखकर भेजने पर हम मालूम कर लेंगे और पत्रिका भेजी जा सकेगी। भविष्य के लिये पत्रिका पर चिपकाए पते पर उनकी ग्राहक-संख्या छपी होगी।

जिन्हें सुविधा हो वे १००/– रुपए एक साथ भेजकर आजीवन ग्राहक बन सकते हैं।

व्यवस्थापक

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

कामराज की दूवती, कर सोळा सिंगार।
संत लुभावण नै चली, कामणगारी नार ॥१॥
गोरी गोरी चाम पर, कर मेकप को लेप।
ज्यूं मकड़ी कै जाल पर, दियो गूंद को चेप ॥२॥
सैंट और परफ्यूम सूं ऊप्यो ठांव कुठाव।
ज्यूं मल-मुत्तर ढेर पर अत्तर को छिड़काव ॥३॥
काजल पालिस आंख-नख तीखा भौंह कमान।
चाली कामण मद-भरी, मत्त गयन्द समान ॥४॥
सन्त सहज ही समझग्यो, यो माया को जाल।
ऊपर चिकनी चामड़ी, भीतर नर-कंकाल ॥५॥
खून मांस नस-जाल को, कैसो बण्यो बणाव।
नौ छिद्रा सूं रिस र यो, मैलो सड़तो स्राव ॥६॥

दोहे धर्म के

सुन्दर मनहर रूप का, चिंतन चले अटूट।
अन्तर के रति-राग के, बंधन सकें न छूट ॥१॥
रमण करे रति-रंग में, काम-अंध मतिमंद।
कैसे चख पाए भला, मुक्ति मोक्ष मकरन्द ? ॥२॥
काम-भोग के मनन में, डूबा रहा अजान।
सम्यक् दर्शन दूर है, होय न सम्यक् ज्ञान ॥३॥
मति रति में उलझी रही, कुमति बनी दुख खान
सम्यक् चिंतन से बनी, कैसी सुम त सुजान ॥४॥
सम्यक् हो संकल्प जब, सम्यक् चिंतन होय।
तो कर विमल विपश्यना, मुक्त मुमुक्षु होय ॥५॥
सम्यक् चिंतन-मनन से, मिले मुक्ति का पंथ।
करे विपश्यी सहज ही, काम-भोग का अंत ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : **रामप्रताप यादव**, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/–

विपश्यना" 12/85
पो. र. नं. Ns (M) 16/85

Licence No. NS 18
Licensed to post Without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)

To